E-Newsletter

विपश्यना

साधकों का
मासिक प्रेरणा पत्र

वार्षिक शुल्क रु. ३०/-
आजीवन शुल्क रु. ५००/-

बुद्धवर्ष 2564, आषाढ़ पूर्णिमा (ऑनलाइन), 5 जुलाई, 2020, वर्ष 50, अंक 1

For online Patrika in various languages, visit: http://www.vridhamma.org/Newsletter_Home.aspx

धम्मवाणी

चरथ, भिक्खवे, चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ, भिक्खवे, धम्मं आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ।

धम्मवाणी संग्रह, (वि.वि.वि), सर्ग 10, लक्षण (भिक्षु कौन?) से साभार.

— भिक्षुओ! चलते रहो। अनेक लोगों के भले के लिए, अनेक लोगों के सुख के लिए, देव-मनुष्यों के कल्याण के लिए, हित के लिये, सुख के लिए विचरण करते ही रहो। लोगों को धर्म का सदुपदेश दो, भिक्षुओ! ऐसा धर्म जो कि आदि में कल्याणकारी है, मध्य में कल्याणकारी है, अंत में कल्याणकारी है। (सर्वतोमुखी कल्याणकारी ही कल्याणकारी है।) उस धर्म का शब्दों के साथ, अर्थों के साथ, भावों के साथ, व्यावहारिक अभिव्यंजना के साथ प्रकटीकरण करो। ऐसा धर्म जिसमें कि केवलमात्र परिपूर्ण परिशुद्धि ही परिशुद्धि है। अशुद्धि के लिए कहीं कोई स्थान नहीं। ऐसे परम परिशुद्ध ब्रह्माचरण का प्रकाशन करो, अपने ब्रह्माचरण द्वारा। ऐसे परम परिशुद्ध धर्माचरण का ज्ञापन करो अपने धर्माचरण द्वारा।

आषाढ़ी पूर्णिमा का महत्त्व

प्रमुख आचार्य पूज्य श्री सत्यनारायण गोयन्काजी का प्रवचन

(मुंबई — 18 जुलाई, 1989)

मेरे प्यारे साधको / साधिकाओ!

आज के लगभग 2600 वर्ष पूर्व इसी आषाढ़ी पूर्णिमा के दिन भगवान बुद्ध ने जो सम्यक सम्बोधि प्राप्त की थी, मुक्ति का जो सम्यक ज्ञान प्राप्त किया था, उसे पहली बार बांटा और तब से आज का यह दिन 'गुरुपूर्णिमा' के रूप में मनाया जाने लगा। मुक्ति के उस महान गुरु ने पहले-पहल लोगों को मुक्ति का मार्ग दिखाया, अतः इस दिवस का बहुत महत्त्व हो गया।

इस दिवस को बहुत महत्त्वपूर्ण मानते हुए, हम इसे केवल कर्मकांडों में ही पूरा कर दें, अथवा वाणी-विलास, श्रुतिविलास, बुद्धिविलास में ही इसका उपयोग करके रह जायँ तो इसके महत्त्व को ठीक से आंका नहीं। इसका जो लाभ उठाना चाहिए वह लाभ नहीं उठा पाये।

क्या महत्त्व है? कैसे इस महत्त्व का पूरा-पूरा लाभ उठाया जाय? धर्म सिखानेवाले का और धर्म सीखनेवालों का परस्पर क्या संबंध होता है? धर्म सिखानेवाले की क्या जिम्मेदारियां होती हैं? और इसी प्रकार धर्म सीखनेवालों की क्या जिम्मेदारियां होती हैं? इनको अच्छी प्रकार समझकर सिखानेवाले और सीखनेवाले, दोनों ही अपने-अपने उत्तरदायित्वों को निभायें, अपनी जिम्मेदारियों को पूरा करें। तभी इस महत्त्वपूर्ण दिवस को मनाने का कोई अर्थ है। समझें, क्या संबंध है?

बहुत पुरानी भाषा में धर्म सिखानेवाले को तथा धर्म सीखनेवाले को गुरु और शिष्य कहा जाता था। आज भी कहा जाता है। लेकिन जिस प्रकार अनेक अच्छे शब्दों का भी समय के साथ सदुपयोग होने के बजाय दुरुपयोग होने लगता है वैसे इनका भी होने लगा। तब किसी-किसी समझदार व्यक्ति ने इन शब्दों का प्रयोग बंद कर दिया।

हम देखते हैं कि भगवान बुद्ध ने भी 'गुरु' शब्द का प्रयोग नहीं किया। धर्म सिखानेवाले को 'कल्याणमित्र' कहा। वह मित्र है तुम्हारा। और मित्र वह है जो तुम्हारे कल्याण में साथी है, जो तुम्हारे मंगल में साथी है। जिसके साथ रहने से तुम्हारा कल्याण हो सके, तुम्हारा मंगल हो सके, तो ही कल्याणमित्र है। मित्र वही है। सच्ची मैत्री वही है जिससे हमारा मंगल सध जाय, जिससे हमारा कल्याण सध जाय।

किसी व्यक्ति का स्वभाव ही ऐसा हो गया कि वह प्राणियों की हत्या करता है। और हमें कोई ऐसा मित्र मिल जाय जो इस स्वभाव को तुड़वा दे, बदल दे, हत्या करने वाले स्वभाव से हमारी मुक्ति करा दे। उसमें हमारा सहायक हो जाय तो हमारा कल्याण मित्र ही हुआ। हमें कल्याण के रास्ते पर डाल दिया उसने। ऐसे ही चोरी करने की आदत हो गई, डाका डालने की, किसी दूसरे की वस्तु को हथियाने की, उसे ठगने की, उसे अपनाने की आदत हो गई। और कोई हमें इस आदत से बाहर निकालने में सहायक हो जाय तो हमारे कल्याण में ही सहायक हुआ न! ऐसा व्यक्ति हमारा कल्याण-मित्र हुआ।

व्यभिचार की आदत हो जाय और कोई व्यक्ति हमें व्यभिचार से बाहर निकालने में सहायक हो जाय तो हमारे कल्याण में ही सहायक हुआ न! झूठ बोलने की आदत हो जाय, कड़वी बात बोलने की आदत हो जाय, परनिंदा करने की आदत हो जाय, चुगली करने की आदत हो जाय, निकम्मी बातें करने की आदत हो जाय, नशे-पते की आदत हो जाय, जूए की आदत हो जाय, और कोई इन आदतों में से निकालने में सहायक हो जाय, तो हमारा कल्याण हो जाय। ऐसा व्यक्ति हमारे लिए कल्याण-मित्र ही है। जो व्यक्ति हमें शील में, सदाचार में प्रतिष्ठित होने में हमारी मदद करता है, हमारी सहायता करता है, वह हमारा सच्चा मित्र है। इसी माने में कल्याण-मित्र कहा गया।

मन वश में नहीं हो, बड़ा चंचल, बड़ा चपल; इधर दौड़े, उधर दौड़े, और कोई हमारे मन को वश में करने के लिए हमें कोई विद्या सिखा दे, मन को वश में करने के काम में हमारा सहायक हो जाय, तो हमारा कल्याण ही हुआ न! ऐसा व्यक्ति हमारा कल्याण-मित्र ही होगा।

मन को वश में करना सीख लिया, लेकिन उसमें जो गहराइयों से विकार भरे पड़ें हैं, न जाने कितने जन्मों की ग्रन्थियां भरी पड़ी हैं—राग की, द्वेष की, मोह की ग्रन्थियां। न जाने कितने-कितने भव संस्कारों की ग्रन्थियां, जो आगे न जाने कितने भव लायेंगी, और दुःख ही दुःख, दुःख ही दुःख का भवचक्र चलेगा। और कोई ऐसा व्यक्ति हमें मिल जाय जो

रजि. नं. 19156/71. Postal Regi. No. NSK/RNP-235/2018-2020

इन ग्रन्थियों को निकालकर इनसे छुटकारा देने का रास्ता बता दे, भवचक्र को तोड़ने का रास्ता बता दे, दु:खचक्र से मुक्त होने का रास्ता बता दे, तो कल्याण ही हुआ न! ऐसा व्यक्ति हमारा कल्याणमित्र ही है।

लोगों के साथ हमारा स्वभाव ऐसा कि हमारे सारे व्यवहार दूषित, तनाव से भरे हुए, खिंचाव से भरे हुए, द्रोह-दौर्मनस्यता से भरे हुए। मन को निर्मल करते-करते ऐसी अवस्था आ जाय कि सबके प्रति प्यार जागे, मैत्री जागे, करुणा जागे, सद्भावना जागे। ऐसी अवस्था प्राप्त करने में कोई हमारा सहायक हो जाय, हमारा साथी हो जाय, तो हमारा कल्याण ही हुआ। ऐसा व्यक्ति कल्याणमित्र ही कहलाये। तो सिखानेवाले के लिए भगवान ने 'कल्याणमित्र' शब्द का इस्तेमाल किया। लोग उन्हें भी कल्याणमित्र ही कहते थे।

बार-बार भगवान कहते थे कि जैसे रात बीतने पर पूरब में जरा-सी ललाई आने लगी, तो यह इस बात का संकेत है कि अब पूर्व में सूरज उगेगा ही। यह पूर्व सूचना है सूरज उगने की कि उसमें ऊषा की ललाई आने लगी। इसी का उदाहरण देकर लोगों को समझाया—किसी को कोई कल्याणमित्र मिल जाय तो समझो मुक्ति होगी ही। इस माने में कल्याणमित्र शब्द का प्रयोग किया गया।

सिखानेवाले के लिए दो शब्द और इस्तेमाल होते थे उन दिनों। एक शब्द था "आचार्य"। आचार्य किसे कहते हैं? जो आचरणवाला व्यक्ति हो। जिसका आचरण ठीक हो, वह आचार्य। जिसका स्वयं का आचरण ठीक नहीं, वह कैसा आचार्य है? लोगों को आचरण सुधारने में कैसे मदद करेगा? तो इस माने में आचार्य। एक और शब्द उन दिनों चलता था "उपाध्याय"। "ध्याय" माने ध्यान करना। "उपाध्याय"—जिसके समीप बैठकर ध्यान करें, वह उपाध्याय; माने जो ध्यान करना सिखाए।

ये शब्द उन दिनों के बहु-प्रचलित शब्द थे। गुरु शब्द इससे पहले भी चलता था, इसके बाद भी चलता रहा। गुरु शब्द में अपने आप में कोई दोष नहीं है। गुरु कहते हैं महान को, गुरु कहते हैं भारी को भी। जिसमें बहुत अच्छाई आ गयी, उन अच्छाइयों का वजन है तो औरों के मुकाबले वह भारी है, बाकी हल्के हैं। इस माने में तो ठीक। पर जब गुरुओं ने गुरुडम चलाना शुरू कर दिया, तब गुरु बिगड़ कर सचमुच भारी हो गया, बोझ हो गया। ऐसा गुरु किस काम का जो लोगों पर बोझ हो जाय। धर्म सिखाने वाला व्यक्ति कभी किसी पर बोझ नहीं बने।

बड़ा सजग था यह महापुरुष। खूब जानता था कि किस तरह बातें बिगड़ती हैं। आरंभ तो होता है—देखो, यह व्यक्ति धर्म की कितनी अच्छी बात सिखाता है! हमें इसका सम्मान करना चाहिए। इसकी बातें सुन करके उस रास्ते पर चलना चाहिए। और भाई इसकी आवश्यकता की पूर्ति भी हमको करनी चाहिए, यह धर्म सिखाने में लगा है और इसकी जरूरतें हम नहीं पूरी करेंगे तो कौन करेगा? बस, इतनी-सी बात।

और बिगड़ते-बिगड़ते, बिगड़ते-बिगड़ते ऐसी बिगड़ गई कि जो गुरु के पद पर बैठा, वह यही आशा करने लगा कि ये मेरे शिष्य हैं तो मुझे खूब सम्मान दें। फूल चढ़ाएं, मालाएं चढ़ाएं, मेरी स्तुति करें, मेरी प्रशस्ति करें, मेरी प्रशंसा करें! खूब पुस्तकें लिखी जायँ मुझ पर, खूब चर्चा हो मेरी। मेरी खूब जयजयकार हो। अरे, तब तो मेरे शिष्य, नहीं तो कैसे शिष्य? यही नहीं करेंगे तो कैसे शिष्य हुए? उसने अपना अधिकार समझा तो बोझ बन गया, भारी हो गया। काम का नहीं, निकम्मा गुरु।

जरूरतें अवश्य पूरी होनी चाहिए। कोई संन्यासी है, भिक्षु है, धर्म सिखाता है, तो उस पर प्रतिबंध है। उसके लिए दो जोड़े चीवर, एक वक्त का भोजन; वह भी साथ नहीं रखे। मिला तो खाया, बात खत्म। और वह भी गोचरी करके। जैसे गाय चरने निकलती है तो एक ही स्थान की सारी घास नहीं खा जाती। यहां थोड़ा-सा खा लिया फिर आगे चली गयी। वहां थोड़ा-सा खा लिया...। इसीको गोचरी कहा।

मधुकरी करेंगे। जैसे भ्रमर एक फूल पर बैठता है, जरा-सा रस ले लेता है। दूसरे फूल पर जा बैठता है, जरा-सा रस ले लेता है। मधुमक्खी एक फूल से जरा-सा पराग लेती है, दूसरे से जरा-सा लेती है, यों करते-करते एक बूंद मधु तैयार कर लेती है। फूल को पता ही नहीं लगा कि उसमें से जरा-सा मधु ले लिया गया। ठीक इसी प्रकार जो संन्यासी है, जो भिक्षु है, वह अपने शिष्यों पर भार न बन जाय, गुरु (भारी) न बन जाय कहीं, बोझ न बन जाय कहीं। तो गांव या नगर में निकलेंगे तो एक घर के सामने खड़े हैं, सिर नीचा किये खड़े हैं। मांगेंगे नहीं।

भगवान के रास्ते पर चलने वाला व्यक्ति भिक्षु हो, संन्यासी हो, कभी नहीं कहेगा- "*भिक्षाम् देहि*"। 'मुझे भिक्षा दो', ऐसा कभी नहीं कहेगा। कहा तो बोझ बन गया। उसका काम तो सिर नीचा करके घर के सामने खड़ा होना है। पात्र हाथ में है ही। अब घर-वाला समझे। वह देना चाहे तो दे; न देना चाहे, तो न दे। बस, एक या दो मिनट सिर नीचा करके खड़ा रहा; कुछ नहीं बोला और मुस्कराते हुए आगे चला गया। मिनट भर या दो मिनट खड़ा रहा, नजर नीची ही है। आगे चला गया।

मैं जिस देश में जनमा, जिस देश में पला, वहां सुबह-सुबह भिक्षुओं की कतार निकलती है भिक्षाटन के लिए। सबकी नजर नीची, नपे-तुले कदमों से चल रहे हैं। मौन हैं, कोई बोलता नहीं। हल्ला-गुल्ला कुछ नहीं। बस, घर के सामने खड़े हुए, मन ही मन मंगल मैत्री दी और आगे बढ़ गये। किसी ने भिक्षा नहीं दी, तो भी मंगल मैत्री। किसी ने पात्र में थोड़ी-सी भिक्षा डाल दी, तो भी मंगल मैत्री। भिक्षु अकेला है और देखा कि मेरे खाने भर का पर्याप्त हो गया, तो किसी स्थान पर बैठ कर भोजन कर लेगा। अपने भोजन की मात्रा से अधिक भिक्षा नहीं लेगा। समूह में है तो पीछे विहार में कोई बीमार है, कोई बूढ़ा है जो नहीं आ सका तो अच्छा उसके लिए भी कुछ ले जायेंगे। लेकिन "भत्तमतञ्ञु"—भत्त की, भात की मात्रा जानता है। मेरे लिए बस इतना ही। जो रह गया पीछे, बीमार है; उसके लिए भी इतना ही; उससे अधिक नहीं। अन्यथा बोझ बन जायगा, गुरु होकर भार हो गया शिष्यों पर।

मधुकरी की, जरा-सा यहां से मिल गया, जरा-सा वहां से मिल गया। अरे, किसी पर बोझ नहीं बना। और जहां-जहां जाता है, वहां मंगल मैत्री ही मंगल मैत्री, मंगल मैत्री ही मंगल मैत्री- "तेरा मंगल हो, तेरा कल्याण हो, तेरा मंगल हो, तेरा कल्याण हो"। ऐसा व्यक्ति भिक्षु है, आचार्य बनने लायक है। उपाध्याय बनने लायक है क्योंकि वह अपनी जरूरतें कम से कम रखता है। और कम से कम जरूरत भी किसी एक शिष्य के सिर पर नहीं पड़ने देता। बांट करके मधुकर की तरह, भँवरे की तरह थोड़ा-सा यहां, थोड़ा-सा वहां, थोड़ा-सा वहां; लोगों को बोझ नहीं लगे। पेट तो भरना है न! जीवन जीना है इसलिए, पर बोझ नहीं बने।

मांगे नहीं कभी। किसी एक प्रसंग में भगवान ने कहा कि लोगों को अपने से दूर भगाना हो तो एक ही रास्ता है भाई- मांगना शुरू करो। लाओ रे, अब यह लाओ रे। अब हमारी यह जरूरत है रे! भागना शुरू कर देंगे लोग, नजदीक नहीं आयेंगे। जिसको धर्म सिखाना है, उसको सीखने वालों को दूर नहीं भगाना है। उनके कल्याण के लिए धर्म सिखा रहा है न! तो आएं, ज्यादा से ज्यादा लोग आएं। आएं तो लेने के लिए आएं। धर्म लेने आएं हैं। यह धर्म-दान दे रहा है, वे ले रहे हैं। देनेवाला देकर खुश होगा, लेनेवाला लेकर खुश होगा।

अगर देने के साथ लेना जुड़ गया तो बनिया हो गया। फिर तो व्यवसायी हो गया। अरे, तुझे इतना उत्तम धर्म सिखाया, मुक्ति का मार्ग सिखा दिया, भव-भव से छुटकारे का मार्ग सिखा दिया; हमें क्या दिया तुमने? कुछ नहीं दिया तो जाओ, कुछ नहीं लाभ होगा तुम्हें। तो सचमुच 'गुरु' हो गया। बहुत बड़ा 'गुरु' हो गया। भार हो गया, गले का पत्थर हो

गया। डुबो ही देगा। ऐसा व्यक्ति कैसे तिरेगा? उसके गले में इतना बड़ा पत्थर पड़ गया गुरु का। उस बोझ के मारे डूब ही जायगा।

बहुत सजग थे भगवान। जानते थे धीरे-धीरे जा करके धर्म अपना शुद्ध रूप खो देगा, और शुद्ध रूप खोने का पहला लक्षण यह होगा कि सिखाने वाला 'गुरु' बन जायगा। उसे तो मंगल-मैत्री देनी है। अरे, जरूरत तो पूरी हो ही जायगी। मंगल मैत्री देनी है।

एक प्रसंगः भिक्षु नागसेन

भगवान बुद्ध के कोई 400 वर्ष के बाद का एक प्रसंग ऐसा कि एक भिक्षु नगर में जाय भिक्षा के लिए और वही नियम—सिर नीचा, "ओक्खित्त-चक्खु"। चक्षु नीचे हैं। धीमे-धीमे कदमों से चल रहा है। और "तुण्हीभावो"- बोलना नहीं, मौन है। मंगल मैत्री भी मन ही मन देनी। रास्ते में जो भी घर पड़ेगा उसे छोड़ेगा नहीं। सबको मंगल मैत्री देनी है न! एक मिनट खड़ा हो। एक घर ऐसा कि उस घर के लोग देखें ही नहीं उसकी ओर। तब भी मन ही मन—"तेरा मंगल हो, तेरा कल्याण हो" और आगे बढ़ जाय।

दस बरस हो गये, रोज भिक्षा के लिए निकलता है। अरे! जिस घर से भिक्षा नहीं मिलती, लोगों में जरा-सी भी श्रद्धा नहीं। कोई आँख खोलकर या आँख उठाकर देखता भी नहीं हमारी ओर; छोड़ो इस घर को। काहे इस घर के सामने एक मिनिट खड़े हों? तो भिक्षु नहीं है, मधुकरी नहीं कर रहा। उसको तो हर घर को यह मौका देना है कि तू भी पुण्य का लाभ ले। नहीं लेता है तो भी "तेरा मंगल हो, तेरा मंगल हो", और आगे निकल जाता है। दस बरस बीतने पर एक ऐसी अवस्था आयी कि एक दिन जब उस घर के सामने से गुजरता है तो घर की मालकिन उसे नजर उठाकर देखती है। कहती है—"बाबा, चले जाओ!" जैसे आजकल कहते हैं भिखारियों को—"बाबा माफ करो"। तो कहती है- "माफ करो, चले जाओ।" तो हमेशा होठों पर मुस्कान ही रहा करती थी, मंगल मैत्री देता ही था। आज तो बहुत मुस्कान आई। बहुत मुस्कान आई और मुँह से बड़े धीरे से निकल भी गया—"तेरा मंगल हो।"

उस गृहिणी ने देखा कि दस बरस हो गये, हमने इस आदमी की ओर कभी देखा तक नहीं, आज हमने देखकर भी कहा "चले जाओ यहां से।" तिस पर भी मुस्कराकर कहता है—"मंगल हो।" क्या बात हुई?

उस दिन उस गृहिणी ने गर्भ धारण किया था, और उस गर्भ में एक बहुत बड़ा ज्ञानी जन्म लेने वाला था। अरे, भले निकालने के लिए ही, पर उसने एक अच्छे भिक्षु की ओर नजर उठाकर देखा तो सही। उस गर्भ के बीज की वजह से देखा। अरे, इसको तो अधिक मैत्री देनी है। अब एक

नये उत्तरदायित्व

वरिष्ठ सहायक आचार्य

1. श्री बी.एस. अच्युत नाइक, भोपाल
2. श्रीमती सरस्वती नाइक, भोपाल

नव नियुक्तियां

सहायक आचार्य

1. श्रीमती नीलिमा कपूर, नॉएडा, यू.पी.

बाल-शिविर शिक्षक

1. श्री कृष्णा विठ्ठल वाघमारे, सांगली
2. श्री संजय अन्नासो चौगुले, सांगली
3. श्रीमती मीना रवींद्र पोद्दार, अकोला
4. श्रीमती गीता पुरुषोत्तम ढोके, अकोला
5. कु. नितू विक्रम मोरे, बुलढाणा
6. श्रीमती पायल सतीश शेंडे, नागपुर
7. श्रीमती शुभांगी सुमित डोफे, नागपुर
8. कु. लक्ष्मी बी. नारनवरे, नागपुर
9. श्रीमती शुभांगी रूपक डोंगरे, नागपुर
10. डॉ. (श्रीमती) वर्षा रवि सोनकुसरे, नागपुर
11. कु. नेहा आवळे, नागपुर
12. श्री सुमित काशिनाथ डोफे, नागपुर
13. साजिद खान वाजिद खान पटेल, वाशिम
14. श्रीमती रचना देवेंद्र मेश्राम, यवतमाळ
15. श्रीमती छाया राजकुमार भगत, यवतमाळ
16. श्री. बंडू शिवरामजी पोहेकर, यवतमाळ
17. Yu Fan, Taiwan.

विपश्यना साधना संबंधी तत्काल जानकारी हेतु निम्न शृंखलाओं (लिंक्स) का अनुसरण (क्लिक) करें—

- वेबसाइट (Website) – *www.vridhamma.org*
- यू-ट्यूब (YouTube) – विपश्यना ध्यान की सदस्यता लें – *https://www.youtube.com/user/VipassanaOrg*
- ट्विटर (Twitter) – *https://twitter.com/VipassanaOrg*
- फेसबुक (Facebook) – *https://www.facebook.com/Vipassanaorganisation*
- इंस्टाग्राम (Instagram) – *https://www.instagram.com/vipassanaorg/*
- Telegram Group for Students – *https://t.me/joinchat/AAAAAFcI67mc37SgvlrwDg*

"विपश्यना साधना मोबाइल ऐप" डाउनलोड करके आनापान तथा अन्य सुविधाओं का लाभ उठायें:
गूगल एंड्रॉयड: *https://play.google.com/store/apps/details?id=com.vipassanameditation*
एप्पल iOS: *https://apps.apple.com/in/app/vipassanameditation-vri/id1491766806*

विपश्यना साधना करने वाले साधकों की सुविधा के लिए:
"विपश्यना साधना मोबाइल ऐप" पर रोज़ाना सामूहिक साधना का सीधा प्रसारण होता है (केवल पुराने साधकों के लिए)—
समय: प्रतिदिन प्रातः **8:00 बजे से 9:00** बजे; दोपहर **2:30 से 3:30** बजे; सायं **6:00 से 7:00** बजे (IST + 5.30GMT)
और अतिरिक्त सामूहिक साधना – प्रत्येक रविवार को।

अन्य लोग भी वर्तमान परिस्थितियों से निपटने के लिए एक प्रभावी उपकरण के रूप में '**आनापान' ध्यान-साधना** का अभ्यास करें।
इस सार्वजनीन 'आनापान' का अभ्यास करने के लिए :
i) उपरोक्त प्रकार से 'विपश्यना साधना मोबाइल ऐप' डाउनलोड करें और उसी को चलायें। या
ii) *https://www.vridhamma.org/Mini-Anapana* पर **मिनी आनापान** चलायें।
iii) **ऑनलाइन प्रसारण द्वारा 'सामूहिक आनापान सत्र'** में शामिल होने के लिए निम्न लिंक पर पुराने साधक के रूप में अपने आप को रजिस्टर करें – *https://www.vridhamma.org/register*

- स्कूलों, सरकारी विभागों, निजी कंपनियों और संस्थानों के अनुरोध पर **विशेष समर्पित आनापान सत्र** भी आयोजित किए जाते हैं।

बच्चों के लिए आनापान सत्रः उम्र 8 - 16 वर्ष – VRI ऑनलाइन 70 Min. के आनापान सत्र आयोजित करा सकते हैं।
कृपया स्कूलों और अन्य शैक्षणिक संस्थानों के लिए और ऑनलाइन सत्रों की अनुसूची के समर्पित सत्रों के लिए ईमेल – *childrencourse@vridhamma.org* पर पत्र लिखें।

और उसे संतान हुई, पुत्र हुआ। धीरे-धीरे उसका मानस बदला। अब तो भिक्षु को भिक्षा देने लगी। पुत्र बड़ा हुआ। बड़ा अच्छा विद्वान हो गया। उन दिनों के शास्त्रों में पारंगत हो गया। अब उसे अपनी पढ़ाई का नशा हो गया। एक दिन उसकी मां ने भिक्षु को कहा कि महाराज बाहर से भिक्षा ले के जाते हो, आज हमारे घर कुछ अच्छे व्यंजन बने हैं, भीतर बैठकर खा लें।

अच्छी बात, आ गया। भीतर बैठा भोजन कर रहा है और वह लड़का बाहर से आता है। अब जिस परंपरा में वह जनमा, पला, वह तो बिलकुल विपरीत परंपरा। "अरे, किस भिक्षु को घर में ले आए?" यों डांटता है। "तेरा मंगल हो, तेरा कल्याण हो", और भिक्षु चला जाता है। बोझ नहीं है न! मैत्री ही मैत्री है, करुणा ही करुणा है। इस बालक में, इस युवक में बहुत बड़ा पुण्य का बीज है, कोई अंतराय आया हुआ है। हम तो मैत्री ही देंगे न! वही बालक, वही युवक आगे जाकर के इसी भिक्षु के पास धर्म सीखता है, साधना सीखता है। इसी की तरह अरहंत अवस्था प्राप्त कर लेता है और भिक्षु नागसेन के नाम से प्रसिद्ध होता है।

भारत में जिसे आज पंजाब कहते हैं, सिंध कहते हैं, नार्थ वेस्ट फ्रॉंटियर कहते हैं, आज का पाकिस्तान कहते हैं, उस सारे प्रदेश पर एक यवन राजा- मिनांदर का राज्य था। अपनी भाषा में उसे मिलिंद कहते थे। यह नागसेन उस मिलिंद राजा से मिल कर उसके प्रश्नों का समाधान करता है। उस व्यक्ति ने जो प्रश्न उठाये, उनका जितना माकूल, जितना अच्छा, जितना सटीक जवाब दिया, वे आगे की पीढ़ियों के लिए बहुत अच्छे मार्गदर्शन के रूप में काम आये। मंगल मैत्री कहां से आरंभ हुई? उसके जन्म के दस माह पहले से। जब उसे कोई भिक्षा नहीं मिलती थी, कोई देखता तक नहीं था उसकी ओर आंख उठा कर, और यह भिक्षु "तेरा मंगल हो, तेरा मंगल हो, तेरा मंगल हो"। क्योंकि सही माने में धर्मवान व्यक्ति है। यदि लक्ष्य यह होता है कि इस घर में मेरा बड़ा सम्मान हो, इस घर से मुझे बहुत कुछ प्राप्त हो तभी मैं इसे आशीर्वाद दूं, तभी इस घर का मंगल हो, इस परिवार का मंगल हो, अन्यथा क्यों दूं? तो सही माने में भिक्षु नहीं। तब तो सचमुच गुरु ही हो जाता, भार ही हो जाता है। भार नहीं बने। सबका मंगल हो, सबका कल्याण हो।

यही करणीय होता है भिक्षुओं के लिए, संन्यासियों के लिए। उनका कोई परिवार नहीं, पत्नी नहीं, बच्चे नहीं, भाई-बंधु नहीं। उनकी अपनी जरूरत कितनी, इसकी मात्रा भी जानते हैं। *"भत्तमत्तञ्ञु"*—भात की इतनी मात्रा, बस। इससे अधिक नहीं। अपने को मच्छरों से, मक्खियों से, शीत आदि से शरीर को बचाने के लिए चीवर, एक भिक्षापात्र, बस। इतनी-सी आवश्यकताएं, इससे अधिक नहीं। कुछ संग्रह करके रखेंगे नहीं। वही तो सही माने में भिक्षु है। ऐसा व्यक्ति सिखा सकेगा।

गृहस्थ जो सिखाया करते थे, उनकी परंपरा का बहुत विवरण हमारे पास नहीं है, लेकिन सिखाया करते थे। जो परंपरा चली आयी ब्रह्मदेश में, उससे यह बात स्पष्ट हुई कि अगर गृहस्थ धर्म सिखाता है तो वह अपने बीबी-बच्चों के लिए, अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए किसी से कुछ न ले। जिस समय कहीं शिविर चल रहा हो और वहां सिखा रहा हो, तो जैसे सब भोजन करते हैं, यह भी वैसे ही भोजन करेगा। जैसे सब रहते हैं, वैसे ही यह भी रहेगा। लेकिन अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए लेना शुरू कर दिया, तो फिर गुरु हो गया। बोझ बन गया। अरे, क्या अंत आयगा?

एक भिक्षु का तो नियम है, इतना ही रखेगा। परंतु गृहस्थ का तो कोई नियम नहीं। यह भी हमारी जरूरत है। अरे, यह भी तो जरूरत है। आखिर घर में रहते हैं तो घर में एक रेडियो तो होना ही चाहिए। एक टेलीविजन, एअरकंडिशनर... अरे! कहां अंत आयगा! गृहस्थ है ना। लेकिन लेना नहीं, बात ही खत्म। लेता नहीं तो सही माने में आचार्य है, सही माने में उपाध्याय है। उसके पास बैठकर के ध्यान सीखने में कोई खतरा नहीं। अन्यथा खतरा हो जायगा।

तो ये शब्द इस्तेमाल हुए उन दिनों—"कल्याणमित्र", "आचार्य", "उपाध्याय"। और उनकी जिम्मेदारियां थीं कि भूले-भटके लोगों को कैसे सही रास्ते पर ले जायँ। किसलिए ले जायँ?

इस आषाढ़ी पूर्णिमा के दिन भगवान ने पांच व्यक्तियों को धर्म सिखाया और सात दिन होते-होते उनके साथ ध्यान करते-करते ये पांचों व्यक्ति अरहंत हो गये।

और फिर आसपास के बनारस नगर के कुछ लोग आने लगे। एक बहुत बड़े धनवान सेठ का लड़का बड़ा व्याकुल, बड़ा बेचैन! कहीं शांति नहीं मिलती। अरे, धन से ही शांति मिल जाती तब तो ये दुनिया के जितने धनवान हैं, वे सब बड़े शांति वाले होते। नहीं हैं न, बड़े दुखियारे हैं! तो यह भी बड़ा दुखियारा। आया भगवान के पास। उन्होंने उसे धर्म सिखाया, बड़ी शांति मिली। उसके मित्रों ने सुना कि हमारा मित्र यश, अरे इतना व्याकुल रहा करता था, इतना डिप्रेस्ड रहता था, इतना एजिटेटेड! इतना व्याकुल! अब तो बड़ा शांत हो गया। हुआ क्या?

उसके चार मित्र और आ गये। तो पांच हुए। और उनके पचास मित्र आ गये तो पचपन हुए। और सभी इस रास्ते चलते-चलते अरहंत हुए। चार महीना होते-होते तो 60 अरहंत भिक्षु हो गये। अब फैलना चाहिए धर्म। लोगों को यह कल्याणकारी विद्या मिलनी चाहिए। तो इन साठों को कहते हैं, जाओ भाई! *"चरथ भिक्खवे चारिकं।"* जाओ, अब चारिका करो। धर्मचारिका करो। किसी एक रास्ते पर एक साथ दो मत जाओ, अकेले जाओ। ताकि अधिक से अधिक लोगों को धर्म का लाभ मिले। भिन्न-भिन्न रास्तों पर एक-एक व्यक्ति निकल जाओ। क्या करो? *"चरथ भिक्खवे चारिकं। बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय"*।

क्यों चारिका कर रहे हो? अधिक से अधिक लोगों को कैसे सुख प्राप्त हो, सही माने में सुख प्राप्त हो। अधिक से अधिक लोगों का सही माने में हित हो। एक व्यक्ति सबका हित नहीं कर सकता, सबका मंगल नहीं कर सकता। अपनी शक्ति के अनुसार, अपनी योग्यता के अनुसार जितनों का कर सकते हो, उतनों का कल्याण करो—*"बहुजन हिताय बहुजन सुखाय"* का यह आदर्श दिया। इन सिखाने वालों को यही उद्देश्य दिया, यही लक्ष्य दिया।

किसलिए धर्म सिखाना है? ताकि अधिक से अधिक लोगों का भला हो। अगर यह लक्ष्य हुआ कि मेरा भला हो, मैं गुरु बन जाऊं। लोग मुझे नमस्कार करने लगें। मेरा बड़ा लाभ हो। मेरा बड़ा सत्कार हो, तो धर्म सिखाने लायक नहीं। अपने लिए कुछ नहीं। जिसको ऊंची से ऊंची अवस्था प्राप्त हो गई, मुक्त हो गया, ऐसा व्यक्ति अपने लिए क्या चाहेगा? धर्म देने के बदले में क्या चाहेगा? बदले में चाह रहा है तो धर्म नहीं दे रहा। अपनी दुकान खोल ली है उसने। व्यवसाय किया है धर्म के नाम पर। नहीं, ऐसा कुछ नहीं चाहेगा।

"बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय, लोकानुकम्पाय"—सारे लोगों पर बड़ी अनुकंपा करके, बड़ी करुणा के साथ—अरे, दुखियारे हैं बेचारे! जो धनहीन हैं वे तो दुखियारे हैं ही। अरे, जो धनवान हैं, कम दुखियारे नहीं। बहुत दुखियारे! गरीब हैं, धनवान हैं, पढ़े-लिखे हैं, अनपढ़ हैं, बच्चे हैं, बूढ़े हैं, पुरुष हैं, नारियां हैं—अरे, सारे के सारे तो दुखियारे हैं! जितने भी दुखियारे हैं, इन सब पर करुणा जागे। इनका दुःख कैसे दूर हो?

धनहीन को धन दे दो और समझो उसका दुःख दूर हो गया तो धोखे की बात हुई। थोड़ी देर के लिए तो दुःख दूर हो गया। अगर धन से ही दुःख दूर हो जाता तो जितने धनवान हैं, उनको तो कभी दुःख

होता ही नहीं। अरे, सभी कितने दुखियारे हैं रे! इनको विकारों से मुक्त होने का रास्ता सिखा दो। राग से मुक्त होने का रास्ता सिखा दो, द्वेष से मुक्त होने का रास्ता सिखा दो, मोह से मुक्त होने का रास्ता सिखा दो। बस, कल्याण हो गया। इनको सही माने में सुख मिल गया। सही माने में इनका हित हो गया। तुम्हारी करुणा सफल हुई। बदले में कुछ नहीं चाहोगे। धर्म सिखाने वाला बदले में यह भी नहीं चाहेगा कि जो-जो लोग मुझसे धर्म सीखने आए हैं, वे मेरे बाड़े में बँध जायें। ये गाय-बकरियां हैं, कैसे इनको अपने बाड़े में बांध लूं? धर्म सिखाने वाला व्यक्ति गड़रिये का काम नहीं करेगा। गड़रिये का काम करता है तो समझ लो—न तो इसको धर्म आता है, न यह धर्म सिखा सकता है।

धर्म सिखाने वाला व्यक्ति कभी संप्रदाय नहीं बांधेगा। संप्रदाय बांधा कि बाड़ा बांध लिया। आज से अपने को इस नाम से पुकारो। हमें ही नमस्कार करो, किसी और को नमस्कार मत कर देना, नहीं तो पाप लगेगा, नरक में चले जाओगे। हमको ही दान-दक्षिणा देना, किसी और को नहीं दे देना, नहीं तो पाप लगेगा। नरक में चले जाओगे। बाड़ा बांधता है। एक संप्रदाय खड़ा करता है। जो लोगों में अंधविश्वास फैलाता है वह धर्म नहीं सिखाता। यदि बदले में कुछ चाहेगा, किसी प्रकार से भी कुछ अपेक्षा रखेगा तो बांधेगा लोगों को, हानि कर देगा लोगों की।

केवल एक ही लक्ष्य है—*"बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय।"* लोगों पर अनुकंपा करते हुए, करुणा करते हुए, अरे, दुखियारे हैं, इनको दुःख से मुक्त होने का कैसे रास्ता मिल जाय! बस, एक ही लक्ष्य है- कैसे धर्म बांटें। बौद्ध धर्म नहीं बांटें, जैन धर्म नहीं बांटें। उलझ जायगा नहीं तो। हिन्दू धर्म नहीं बांटें, मुस्लिम धर्म नहीं बांटें। उलझ जायगा। धर्म बांटें। धर्म बांटता है तो सत्य बांटता है। सच्चाई बांटता है। कुदरत का कानून क्या है, यह सिखाता है। जो कि बौद्ध पर भी लागू होता है, जैन पर भी, हिन्दू पर भी, मुसलमान पर भी, ब्राह्मण पर भी, शूद्र पर भी, काले पर भी, गोरे पर भी; सब पर लागू होता है। वह तो धर्म सिखाता है लोगों को, क्योंकि वह धर्म सिखाने लायक है।

अगर बौद्ध धर्म सिखाने लगा, कि जैन धर्म सिखाने लगा, कि हिन्दू धर्म सिखाने लगा, कि ईसाई धर्म सिखाने लगा, तो बँध गया संप्रदाय में। इस बेचारे को खुद को धर्म नहीं आता। जिसे खुद को नहीं पता कि धर्म क्या होता है, वह क्या धर्म सिखायेगा? सिखा ही नहीं पायेगा। वह तो कुदरत का कानून क्या कहता है, यह सिखाता है। कुदरत का कानून यह कहता है, विश्व का विधान यह कहता है—जैसे ही अपने भीतर राग जगाओगे, कुदरत तुम्हें दंड देना शुरू कर देगी। व्याकुल हो जाओगे, बेचैन हो जाओगे। जैसे ही अपने भीतर द्वेष जगाओगे, कुदरत तुम्हें दंड देना शुरू कर देगी। व्याकुल हो जाओगे, बेचैन हो जाओगे।

और कुदरत इस बात का पक्षपात नहीं करेगी। धर्म इस बात का पक्षपात नहीं करेगा कि यह राग, द्वेष जगाने वाला व्यक्ति अपने को बौद्ध कहता है, कि जैन, कि हिन्दू, कि मुसलमान कहता है। यह अपने को भारतीय कहता है, कि बर्मी, कि अमेरिकन, कि ब्राह्मण कहता है, कि शूद्र। वह नहीं देखेगी प्रकृति। जिसने क्रोध जगाया, द्वेष जगाया, दुर्भावना जगाई, इसी तरह राग जगाया, वासना जगाई; जिसने जगाई वही व्याकुल हो गया। और जितनी जगाई, उतना व्याकुल हो गया। बस, इसको धर्म कहते हैं। कुदरत का यह कानून है भाई!

और राग जगाना बंद कर दें, द्वेष जगाना बंद कर दें, दुर्भावना जगानी बंद कर दें, चित्त को निर्मल रखें। निर्मल चित्त होगा तो अपने स्वभाव से उसमें मैत्री जागेगी, करुणा जागेगी, सद्भावना जागेगी। और फिर कुदरत का कानून है, धर्म है, विश्व का विधान है कि पुरस्कार मिलना शुरू हो जायगा। तुरंत पुरस्कार मिलेगा—मन प्रसन्नता से भर उठेगा! जैसे ही मैत्री जगाई "तेरा मंगल हो, तेरा कल्याण हो, तेरा भला हो", भीतर बड़ी शांति मालूम होने लगेगी। बड़ा सुख मालूम होने लगेगा। अरे, पुरस्कार मिला न प्रकृति का! बँधे-बँधाये नियम हैं भाई! प्रकृति इस बात को नहीं देखेगी कि यह मैत्री जगाने वाला व्यक्ति, यह करुणा जगाने वाला व्यक्ति, यह सद्भावना जगाने वाला व्यक्ति अपने को हिन्दू कहता है, कि बौद्ध कहता है, कि जैन कहता है, कि मुसलमान कहता है। इसने पीले कपड़े पहने हैं, कि सफेद कपड़े पहने हैं, कि काले पहने हैं, कि कुछ नहीं पहना है। प्रकृति इन सारी बातों को नहीं देखती। क्या जगाया मन में? जो जगाया, वैसा ही फल मिला। तत्काल फल मिला। बस, इसी को धर्म कहा जाता था। उलझ गये संप्रदाय के जंजाल में आ करके।

संप्रदाय नहीं, उसने धर्म सिखाया। कैसा धर्म? *"आदि कल्याणं, मज्झे कल्याणं, परियोसान कल्याणं"*—आदि में कल्याणकारी, मध्य में कल्याणकारी, अंत में कल्याणकारी। धर्म वह है जो सब जगह कल्याण ही कल्याण करता है। हर कदम कल्याण ही कल्याण है।

"आदि" क्या होती है? धर्म के रास्ते चलने वाला पहले शील-सदाचार का पालन करना सीखता है। एक व्यक्ति दुश्शील जीवन जीता हो, दुराचारी का जीवन जीता हो तो अब बदल गया। अब सुशील जीवन जीने लगा। अब सदाचार का जीवन जीने लगा। अरे, यहीं मंगल शुरू हो गया। यहीं कल्याण शुरू हो गया। तो आदि में कल्याणकारी।

अब अगला कदम मन को वश में करना सीखता है, चित्त को समाधिस्थ करके समाहित करना सीखता है; तो मध्य में कल्याणकारी। रास्ते के बीच यानी, मध्य रास्ते पर आया तो और कल्याणकारी। शील के साथ अब समाधि का भी अभ्यास करने लगा, यह भी कल्याणकारी।

और आगे जाकर अपनी प्रज्ञा जगाता है। भीतर जो राग की जड़ें हैं, द्वेष की जड़ें हैं, उन्हें निकालकर बाहर करता है। भीतर की ग्रंथियों को निकालकर बाहर करता है तो चित्त को निर्मल करता है। अरे, अंत में कल्याणकारी। निर्वाण का साक्षात्कार कर लेता है, मुक्ति का साक्षात्कार कर लेता है। इंद्रियातीत, भवातीत अवस्था का साक्षात्कार कर लेता है। इसी जीवन में, ध्यान करते-करते उस अवस्था का साक्षात्कार कर लेता है। अरे, अनंत कल्याण हो गया। इससे बड़ा और क्या कल्याण होगा? "आदि में कल्याणकारी, मध्य में कल्याणकारी, अंत में कल्याणकारी", यही धर्म सिखाओ। और कोई बात नहीं।

और कैसा धर्म? *"केवलं परिपुण्णं केवलं परिसुद्धं"*। परिपूर्ण है। परिशुद्ध है। परिपूर्ण किस माने में? कि इसमें कुछ जोड़ने को जगह ही नहीं। पूर्ण है। शील, समाधि, प्रज्ञा के रास्ते चलने वाले व्यक्ति को और कुछ करने की आवश्यकता नहीं। परिपूर्ण है, कुछ जोड़ने की इसमें जरूरत नहीं। परिशुद्ध है, इसमें से कुछ निकालने की जरूरत नहीं। इसमें कोई ऐसी खोटी बात नहीं कि इसको तो निकालो भाई! अरे, ऐसा परिशुद्ध है कि इसमें से निकालने को कुछ है ही नहीं। इतना परिपूर्ण है कि इसमें जोड़ने को कुछ नहीं। ऐसा शुद्ध धर्म सिखाओ।

और कैसे सिखाओ? प्रकाशित करो। पहले कहा—*"देसेथ"*। देशना दो धर्म की। लोगों को धर्म का दान दो, सिखाओ। फिर कहा—*"पकासेथ"* - प्रकाशित करो। कैसे प्रकाशित करे? पहले अपने जीवन में उतारे तो प्रकाशित हो। लोग देखें कि यह सिखाने वाला कैसा जीवन जीता है? तब धर्म प्रकाशित हुआ, धर्म प्रकाश में आ गया। देख धर्म का जीवन जीने वाला ऐसा होता है। तब लोग चलेंगे न धर्म के रास्ते, नहीं तो कैसे चलेंगे? अंगुली उठाकर कोई कहे, "इस रास्ते चलो, बहुत अच्छा रास्ता है।" उस रास्ते पर लोग पीछे जायेंगे, पहले तुम्हारी अंगुली को देखेंगे। जो अंगुली उठी है, उसको देखेंगे। उस पर धब्बे लगे हों, खून लगा हो, मैल लगा हो, तो लोग दूर भागेंगे—कैसा आदमी है? अरे, तो प्रकाशित करो, धर्म को अपने जीवन में उतार करके प्रकाशित

करो। यह सारी बातें सिखानेवाले के लिए।

और इसी तरह सीखनेवाले के लिए। कोई हमारा आचार्य है, कोई हमारा गुरु है। उसने हमें कहा कि ऐसा करो, ऐसा करो, तुम्हारा बड़ा कल्याण हो जायगा। ऐसा करो, यह धर्म का रास्ता है, तुम्हें मुक्ति मिल जायगी। और क्योंकि गुरुमहाराज ने कहा है तो गुरु वचन प्रमाण, बाबा वचन प्रमाण, या शास्त्र वचन प्रमाण, इसलिए हम मान रहे हैं तो भटक जायगा। धर्म के रास्ते चलने वाला व्यक्ति ऐसा नहीं करता। मनुष्य है न! मनन करना, चिंतन करना उसका काम। प्रकृति ने उसे यह धर्म दिया, यह स्वभाव दिया है तो जो बात सुनेगा, अपनी बुद्धि की तराजू पर तौलकर देखेगा, तर्क की कसौटी पर कसकर देखेगा—यह आदमी जो कह रहा है, ठीक है न! कम से कम बुद्धि के स्तर पर तो ठीक है न! अंधविश्वास के साथ किसी के पीछे चलने लगा तो समझो मनुष्य का गुण ही खो दिया। यह पशुओं का काम है। एक भेड़ जिस ओर जाय तो सारी भेड़ें उसी ओर जायेंगी। भले वह खड्डे में गिरे तो सारी खड्डे में गिरेंगी। यह तो पशुओं का स्वभाव है, मनुष्य का स्वभाव नहीं। तो धर्म की जो बात सुनेगा, उसे समझेगा, चिंतन करेगा, मनन करेगा। उतना ही नहीं, अब उसे धारण करके देखेगा। फिर जांचेगा—सचमुच धारण करने में मेरा कल्याण है या नहीं? कल्याण है, यह समझ में आ गया; बुद्धि के स्तर पर भी समझ में आ गया कि बात तो बहुत ठीक है, तर्कसंगत है, युक्तिसंगत है, धर्मसंगत है; और जरा-सा अभ्यास करके भी देख लिया- ठीक है, कल्याणकारी है। इसमें मेरी हानि नहीं होती। बस, इतना करने के बाद तो अब चलना ही चलना है। लम्बा रास्ता है पर चलना ही चलना है।

अब चले नहीं और यह समझे कि गुरु महाराज हमें तार देंगे, कृपा हो जायगी गुरु महाराज की। हम पर तो कृपा हो ही जायगी। क्यों भाई? तुम पर क्यों कृपा हो जायगी? तुम चढ़ावा ज्यादा चढ़ाओगे, इसलिए। तुम प्रशंसा ज्यादा करोगे, इसलिए। फूल की मालायें ज्यादा पहनाओगे, इसलिए। लोगों में बहुत बड़ाई करते फिरोगे—हमारे गुरु महाराज ऐसे चमत्कारी हैं। अरे! जिसकी ओर नजर उठा दें, बस वही तर जाय। इसलिए तुम्हें मुक्त कर देंगे? तो ऐसा ही पागल गुरु, ऐसे ही पागल शिष्य। धर्म-वर्म कुछ नहीं वहां पर। जहां-जहां गुरुडम चलता है; गुरुडम के माने जहां गुरु कहता है- बस, मेरी शरण आ जाओ। मेरा काम है मुक्त करना। तुम्हारा काम शरण में आना, हमारा काम मुक्त करना। बस, डूब गये दोनों। ऐसा डूबा हुआ गुरु बहुत भारी है। पत्थर की तरह भारी है तो स्वयं तो डूब ही, साथ-साथ बेचारे चेले को भी ले डूबा। इतना वजन लिया हुआ चलता है- "मैं तार दूंगा। मेरी शरण आ जाओ। मैं कर दूंगा तुम्हारे लिए सब कुछ"। तो धर्म नहीं है।

सिखानेवाले को बार-बार यह बात कहनी पड़ेगी और कहनी ही चाहिए। शास्त्रों में लिखी है, इसलिए कहनी पड़ेगी नहीं। वह खूब समझता है- मैं नहीं तार सकता भाई! मैं तो केवल रास्ता बता सकता हूं, काम तो तुमको ही करना पड़ेगा। *"तुम्हेहि किच्चं आतप्पं"*- तपना तुम्हें पड़ेगा। काम तुम्हें ही करना पड़ेगा। *"अक्खातारो तथागता"*- कोई तथागत होगा तो केवल रास्ता बता देगा, चलना तो तुम्हें ही पड़ेगा। तब समझो कि गुरु सद्गुरु है। सत्य की बात कहता है। बोझ वाला गुरु नहीं है। और रास्ता चलने वाला भी अच्छा शिष्य हो गया क्योंकि अब वह अपने कल्याण के रास्ते चलने लगा। चलना है।

गुरु किसी तरह से भी अपने साधकों को, साधिकाओं को मिथ्या विश्वासों में नहीं बांधें। वे बँधते हों तो खंडन करे उस बंधन का। बँधने न दें लोगों को। अपने पांव पर खड़ा होना सिखा दे। अपने पांव पर खड़े होकर चलोगे तो मुक्त अवस्था पर पहुँचोगे। दूसरे के कंधे पर चढ़कर कोई व्यक्ति आज तक मुक्त अवस्था तक नहीं पहुँचा, तुम भी नहीं पहुँच पाओगे। इस बात को बार-बार, बार बार कहता जाय।

और अच्छा शिष्य वह जो इस बात को स्वीकार करे कि गुरु से तो मुझे रास्ता मिल गया। अच्छा रास्ता मिल गया। मैंने जांच कर देख लिया। बुद्धि से परख कर देख लिया, तर्कों से समझकर देख लिया। और चल कर भी देख लिया—अच्छा रास्ता है। अब चलना तो मुझे ही पड़ेगा। जितना समय लगना है, लगे। मैंने कितने विकार इकट्ठे कर रखे हैं, उनको दूर करने में अधिक समय लग सकता है तो लगे। विकार निकलते तो हैं न- यह जांचता रहे। मेरे विकार निकल तो रहे हैं न! जरा-जरा तो कम हो रहे हैं न! अरे, 100 मन का बोझ लिए चल रहा था, एक मन तो उतरा, दो मन तो उतरा, कुछ तो उतरा। कुछ तो हल्के हुए, तो समझो रास्ता ठीक है। चलते चलते 99 मन भी उतर जायेंगे। 100 के 100 मन उतर जायेंगे, हम मुक्त हो जायेंगे। रास्ता ठीक मिल गया हमें, अब चलना है।

अब यह सारी की सारी जिम्मेदारी शिष्य पर आई कि चलना है। गुरु पर एहसान नहीं कर रहा चल करके, अपने आप पर एहसान कर रहा है। अपने भले के लिए, अपनी मुक्ति के लिए चलना है। पर चलना है। गुरु के प्रति आदर भाव है कि इस व्यक्ति ने हमें रास्ता बता दिया चलने का, हमें प्रोत्साहन दे दिया, बस। बाकी तो काम हमें ही करना है।

अब आज के भारत में, हो सकता है 2500 वर्ष पूर्व के भारत में भी ऐसा ही रहा हो कि इतने सारे संप्रदाय और उनकी भिन्न-भिन्न मान्यताएं और उनके भिन्न-भिन्न कर्मकांड! बेचारे उलझे हुए लोग! जिस किसी परंपरा का व्यक्ति होगा, जिस किसी बाड़े में बँधा हुआ पशु होगा, गाय बकरियां ही बँधती हैं बाड़े में, मनुष्य कहां बँधे? लेकिन बँध गया। जिस किसी बाड़े में बँधा हुआ है, उस बाड़े के चारों ओर का जो बंधन है, उसे वही प्रिय लगता है। और बाड़े में बँधा है तो कर्मकांड करता है। बाड़े में बँधा है तो वेशभूषा को महत्त्व देता है, दार्शनिक मान्यता को महत्त्व देता है। अब वैसा व्यक्ति धर्म के रास्ते पर भी चले, शील का पालन करता हुआ, सच्चाई के आलंबन पर अपने मन को स्थिर करता हुआ, अपने अंतर्मन की गहराइयों से विकारों को निकालता हुआ मुक्ति के रास्ते पर चले, और साथ-साथ यह भी चाहे कि बाड़ा तो यही, इसी बाड़े में बँधा रहूंगा। हमारे बाड़े के जो कर्मकांड हैं, अरे वही तो धर्म है। वह छूट जायगा तो धर्म कहां- ऐसा व्यक्ति आगे नहीं बढ़ सकता।

नया-नया आदमी तो हमारे पास आ करके ऐसा कहता है, हमने सुना है—यह साधना तो बहुत अच्छी है, आपकी बातें भी बहुत अच्छी हैं, लेकिन डर यही लगता है कि हमारा तो सारा धर्म-कर्म छूट जायगा। साधना में आयेगा तो धर्म-कर्म छूट जायेगा? किसको धर्म-कर्म मानता है बेचारा? अपने कर्मकांडों को धर्म-कर्म मानता है। अपनी दार्शनिक मान्यता को धर्म-कर्म मानता है, अपनी वेशभूषा को धर्म-कर्म मानता है। उसके लिए वही धर्म-कर्म है। मन में चाहे जितनी भी विकृति हो- राग से भरा हो, द्वेष से भरा हो, व्याकुल हो, दुश्शील हो; वह अधर्म नहीं है। उसको उससे छुटकारा पाना धर्म नहीं है। लेकिन हमारी परंपराओं की जो रूढ़ियां हैं, हमारी परंपरा के जो कर्मकांड हैं, हमारी परंपरा की जो दार्शनिक मान्यता है, वह छूट जाय तो धर्म छूट गया। बिना शिविर किया हुआ आदमी ऐसा कहे तो करुणा आती है—बेचारा, अभी उलझा है, इसे नहीं पता कि धर्म क्या होता है। पर एक शिविर में आकर भी कोई ऐसा कहे, तो भी मुस्कराते हैं—बेचारे को अभी नहीं समझ में आया। दो शिविर में आकर भी कहे तो भी समझ सकते हैं। अरे, दस शिविर में आकर भी कहे तो बड़ा निकम्मा आदमी है। कुछ पल्ले नहीं पड़ा रे इसके!

किसको धर्म मान रहा है? ऐसा व्रत-उपवास कर लूंगा तो बड़ा धर्मवान हूं। ऐसा कर्मकांड कर लूंगा तो बड़ा धर्मवान हूं। ऐसी दार्शनिक

मान्यता मानता हूं तो बड़ा धर्मवान हूं। इसी में जांचता है अपने आपको। अरे, मेरे जीवन में शील-सदाचार उतरा कि नहीं? मेरा मन वश में होने लगा कि नहीं? मेरा मन निर्मल होने लगा कि नहीं? इस मापदंड से मापना शुरू करे और कहे कि अभी पूरा धर्मवान नहीं हुआ भाई! लेकिन जरा-जरा हो रहा हूं, धर्मवान होने के रास्ते पर चल रहा हूं। वह आदमी धर्मवान बन जायगा। जो साधना तो करेगा विपश्यना की लेकिन उसे गौण समझेगा—यह तो एक तकनीक है जो गुरु महाराज से सीख लिया। इससे सिरदर्द ठीक हो जाता है न! माइग्रेन ठीक हो जायगी। इससे यह गठिया है न हमारी, यह ठीक हो जायगी। ओह! इससे हमको एक बार हार्ट का अटैक आया था न, वह अब नहीं आयगा। हमको जो प्रेशर रहता है न, वह ठीक हो जायगा। तो भाई! उसके लिए धर्म इसी काम का है। उसने एक अस्पताल मान ली कि उसमें ये रोग ठीक हो जायेंगे। और असली धर्म तो हमारा वह जो सुबह-सुबह हम आंख बंद करके सामायिक करते हैं, प्रतिक्रमण करते हैं, कायोत्सर्ग करते हैं। हम स्थितप्रज्ञ होते हैं, हम अनासक्त होते हैं, हम यह पाठ कर लेते हैं, वह पाठ कर लेते हैं। अरे! तो 10 क्या 100 शिविर ले करके भी वैसा ही रहा, बाड़े में बँधा हुआ ही रहा। नहीं बात समझ में आयी।

समझना चाहिए—जिस किसी काम से हमारा सदाचार पुष्ट नहीं होता, जिस किसी काम से हमारा चित्त किसी सत्य आलंबन पर एकाग्र नहीं होता, जिस किसी काम से हमारे मन के विकार गहराइयों से नहीं निकलते; समझ लेना चाहिए वह धर्म नहीं है। कोई उसको चाहे जैसा धर्म कहे, वह धर्म नहीं है।

सामायिक बहुत बड़ा धर्म है। किसको सामायिक कहते हैं? हमारा चित्त अंतर्मन की गहराइयों में जाकर समता में स्थापित हो जाय। जांच करके देखे कि यह जो मैंने 48 मिनट का कर्मकांड किया, क्या इसमें मेरा चित्त गहराइयों तक गया? पहली बात तो यह देखे कि किन गहराइयों तक गया? और दूसरी बात यह देखे कि उन गहराइयों में जाकर के उसने राग और द्वेष पैदा करने का जो स्वभाव था, उससे जरा-जरा सी भी मुक्ति पाई क्या? नहीं पाई तो धोखा है न!

कायोत्सर्ग कर रहा हूं, कायोत्सर्ग कर रहा हूं। जांचे अपने आपको कि कायोत्सर्ग के नाम पर मैंने जो कुछ किया, क्या सचमुच काया का उत्सर्ग किया? क्या अब सचमुच काया के प्रति मैं-मेरे का भाव नहीं आता? काया के प्रति जरा-सा भी ममत्व नहीं है? क्या ऐसी स्थिति आने लगी? आने लगी तो कायोत्सर्ग ठीक है। नहीं आने लगी तो कायोत्सर्ग धोखा हो गया न!

प्रतिक्रमण किया, प्रतिक्रमण किया। अरे क्या प्रतिक्रमण किया? चित्त मेरा अतिक्रमण किये जा रहा है। राग की ओर ले जाता है, तो अतिक्रमण करता है। द्वेष की ओर जाता है, तो अतिक्रमण करता है। मैंने इसे मोड़ा कि नहीं? मोड़ा तो प्रतिक्रमण किया। गलत रास्ते अतिक्रमण करने वाले चित्त को प्रतिक्रमण करके मैंने सही रास्ते पर लाया तब प्रतिक्रमण हुआ। नहीं तो कैसा प्रतिक्रमण हुआ रे! धोखा ही धोखा है न!

स्थितप्रज्ञ हुआ। क्या स्थितप्रज्ञ हुआ? क्षण-प्रतिक्षण प्रज्ञा कायम रहे तब स्थित हुआ प्रज्ञा में। और क्षण-प्रतिक्षण प्रज्ञा कायम रहे, उसी को संप्रज्ञान कहा, उसी को *'सम्पजञ्ञ'* कहा। यह अभ्यास कर रहा हूं क्या? सोते-जागते खाते-पीते, चलते-फिरते, हर अवस्था में प्रज्ञा कायम है क्या? है तो स्थितप्रज्ञ हुआ। अन्यथा केवल स्थितप्रज्ञता का पाठ कर लेने से स्थितप्रज्ञ कैसे हो गया रे? धोखा है न!

इन्हीं मापदंडों से हर साधक, हर शिष्य अपने आपको मापेगा कि सचमुच धर्म के रास्ते चल रहा हूं कि नहीं? सचमुच मेरे राग दूर हो रहे हैं कि नहीं? सचमुच मेरे द्वेष दूर हो रहे हैं कि नहीं? नहीं हो रहे तो विपश्यना के नाम पर भी कोई धोखा है, कोई कर्मकांड है।

ऐसा हो तो अपने मार्गदर्शक से एक बार नहीं, 100 बार मिल करके इसका स्पष्टीकरण करे। मेरे विकार कुछ-न-कुछ तो निकलने ही चाहिए न! कुछ तो सुधार होना ही चाहिए न! कुछ नहीं हो रहा तो कहीं-न-कहीं, कोई-न-कोई भूल कर रहे हो। अगर सचमुच शुद्ध धर्म के रास्ते चलते हो, शील का पालन करते हुए, जो सच्चाई का आलंबन है, अपने ही साढ़े-तीन हाथ की काया के भीतर, अपने शरीर और चित्त से संबंधित कोई आलंबन है, उस आलंबन को आधार बना कर चित्त को एकाग्र कर रहे हो और अपने शरीर पर होने वाली इन संवेदनाओं को देखते-देखते उनके प्रति राग पैदा करने का, द्वेष पैदा करने का जो स्वभाव था, उसे तोड़ रहे हो, तब तो विपश्यना ठीक कर रहे हो। अन्यथा विपश्यना के नाम पर भी कहीं उलझ गये। धोखा यह हो रहा कि हम विपश्यना कर रहे हैं लेकिन वस्तुतः विपश्यना नहीं कर रहे। कौन जाने उसके साथ-साथ कोई मंत्र जोड़ दिया। कौन जाने उसके साथ-साथ कोई शब्द जोड़ दिया। अरे, यही जोड़ दिया—'अनिच्च, अनिच्च अनिच्च'। जपने लगे 'अनिच्च, अनिच्च, अनिच्च' तो चित्त तो खूब एकाग्र हो जायगा, पर आलंबन क्या? वह तो केवल बनाया हुआ, बनावटी आलंबन है न!

तुम्हारे शरीर और चित्त से संबंधित आलंबन हो। सांस हो तो यह शरीर और चित्त दोनों से संबंधित है। इसके सहारे-सहारे चित्त एकाग्र हुआ तो सही आलंबन के सहारे चित्त एकाग्र हो रहा है।

अन्यथा कोई शब्द जोड़ दिया होगा, कोई रूप जोड़ दिया होगा, कोई आकृति जोड़ दी होगी, कोई न कोई दार्शनिक मान्यता थोपने लगे होगे—हमारी यह मान्यता तो ठीक ही है, बस इसी मान्यता का दर्शन कर रहे हैं हम तो। हमारी जो मान्यता है, उसका दर्शन हो रहा है। उसका दर्शन हो रहा है, अरे! मिथ्या दर्शन में पड़ गये न! सच्चाई छोड़ दी न! जो-जो अनुभव हो रहा है, जिस-जिस क्षण जो-जो अनुभव होता चला जाय, उस क्षण की वही सच्चाई है। ऐसा समझ करके, ऐसा मान करके जो कदम-कदम चलता है उसके जीवन में परिवर्तन आना ही चाहिए। आता ही चला जायगा।

बहुत बड़ी जिम्मेदारी है धर्म के रास्ते चलने वाले साधक की, साधिका की। अपने कल्याण के लिए जिम्मेदारी है। मुक्ति का मार्ग मिल गया। इतना सही मार्ग मिल गिया, इतना कल्याणकारी मार्ग मिल गया। मनुष्य जीवन में अब मैं इसका लाभ उठाऊं, मनुष्य जीवन को सार्थक करूं। तब तो बात ठीक है।

एक और बड़ी जिम्मेदारी है साधक की, साधिका की, कि जो साधक नहीं है, वे मेरी ओर देखते हैं कि यह तो पुराना साधक है। अरे, इतने वर्षों से साधना करता है और अभी भी शराब पीता है। अभी भी जुआ खेलता है। अभी भी व्यभिचार करता है। अभी इसमें यह दोष है, यह दोष है...। अरे, तो जिनमें थोड़ी बहुत श्रद्धा जागी होगी धर्म के प्रति, वह भी समाप्त हो जायगी। और जिनमें बिलकुल श्रद्धा नहीं है, वे और दूर भागेंगे। एक तो पहले से ही श्रद्धा नहीं है, दूसरे देखेंगे कि इस तरह के लोग हैं ये, तो दूर भागेंगे। इस प्रकार जिनमें थोड़ी श्रद्धा है, उनकी श्रद्धा भी हमने खत्म कर दी। जिनमें श्रद्धा नहीं थी, उनकी श्रद्धा नहीं जगने दी। लोगों का अकल्याण किया, अमंगल किया, लोगों की बहुत बड़ी हानि कर दी।

साधक यह जिम्मेदारी भी खूब समझता रहेगा कि धर्म मेरे ही कल्याण के लिए नहीं, अनेकों के कल्याण के लिए है। धर्म में आत्महित और सर्वहित, आत्म-मंगल और सर्व-मंगल, आत्मोदय और सर्वोदय; इसके लिए धर्म होता है। तो मेरा हर कदम, मेरा हर काम इस तरह का

हो कि जिन लोगों में धर्म के प्रति जरा-सी भी श्रद्धा नहीं है, उनमें श्रद्धा जागनी शुरू हो जाय। जिन लोगों में धर्म के प्रति श्रद्धा जागी है, उनकी श्रद्धा और बलवती होती चली जाय। यही लक्ष्य होना चाहिए हर साधक का, हर साधिका का। तो बस, अपना भी मंगल होगा, औरों का भी मंगल होगा।

समय आया है- सारे संसार के मंगल का, सारे संसार के कल्याण का, सारे संसार के हित-सुख का। जो-जो लोग इस समय का लाभ उठाकर के धर्म के रास्ते चलने लगे हैं, वे अपने इस दुहरे उत्तरदायित्व को खूब समझें। इस रास्ते पर चल कर के मुझे केवल अपना ही मंगल नहीं साधना है, औरों के मंगल में भी सहायक बन जाना है। इस रास्ते पर चल कर के मुझे केवल अपनी ही मुक्ति नहीं साधनी है, औरों की मुक्ति में भी सहायक हो जाना है। मेरा भी मंगल हो, औरों का भी मंगल हो। मेरा भी कल्याण हो, औरों का भी कल्याण हो। मेरा भी हित-सुख सधे, औरों का भी हित सुख सधे। अधिक से अधिक लोग धर्म के रास्ते चलें। अधिक से अधिक लोग धर्म के रास्ते पर चल कर अपना कल्याण साध लें। अपना मंगल साध लें। अपनी स्वस्ति-मुक्ति साध लें।

भवतु सब्ब मङ्गलं, भवतु सब्ब मङ्गलं, भवतु सब्ब मङ्गलं!

साधु, साधु, साधु!

झूठ बोलने से बचना चाहिए

"धर्म दुःख को, शोक को मिटाता है और सुख प्रदान करता है। यह सुख कौन देता है? बुद्ध नहीं देते। यह आपके अंदर जागृत अनित्य विद्या है जो सुख देती है। हमें विपश्यना का अभ्यास करना चाहिए ताकि अनित्य विद्या का ज्ञान हमेशा होता रहे, अनित्यता का दर्शन सदा प्रतिक्षण होता रहे, यह कभी अन्तर्धान न हो जाय। हमलोग कैसे अभ्यास करें? चार तत्त्वों पर ध्यान केन्द्रित करो, शांत होकर समाधि का अभ्यास करो और **शील को भंग मत करो। झूठ बोलने से बचना चाहिए, यह शील जल्दी टूटता है।** मुझे दूसरों से इतना भय नहीं, लेकिन झूठ बोलकर मैं अपने शील के आधार को कमजोर बनाता हूं। जब शील कमजोर हो तो समाधि भी कमजोर होगी और प्रज्ञा भी कमजोर हो ही जायगी। सत्य बोलें, नियमित अभ्यास करें, समाधि को दृढ़ बनावें और इस पर ध्यान दें कि आपके शरीर पर हो क्या रहा है। ऐसा करने से अनित्यता की प्रकृति स्वाभाविक रूप से प्रकट होगी। ..." — सयाजी ऊ बा खिन।

अर्थात- एक धार्मिक व्यक्ति को न झूठ बोलना चाहिए, न जानबूझ कर कुछ छिपाना चाहिए।

(सयाजी जर्नल में प्रकाशित सयाजी ऊ बा खिन का व्याख्यान- 'मार की दस सेनाएं'- से साभार उद्धृत)

विपश्यना विशोधन विन्यास से प्रथम पीएच.डी. उपाधि

डॉ. श्रीमती बलजीत लांबा **विपश्यना विशोधन विन्यास** की प्रथम विद्यार्थी हैं जिन्हें पालि में डॉक्टरेट (Ph.D.) की उपाधि प्रदान की गयी। इन्होंने राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कई शोध-प्रबंध प्रस्तुत किये। इसके लिए वे बधाई की पात्र हैं।

दोहे धर्म के

आओ लोगों विश्व के, धारें धर्म महान।
शील समाधि निधान हों, होवें प्रज्ञावान॥

धर्म-पंथ ही शांति-पथ, धर्म-पंथ सुख-पंथ।
जिसने पाया धर्म-पथ, मंगल मिला अनंत॥

आओ मानव मानवी, चलें धरम के पंथ।
पग, पग, पग चलते हुए, करें दुखों का अंत॥

कदम-कदम चलते रहें, शुद्ध धरम के पंथ।
कदम-कदम बढ़ते रहें, करें दुखों का अंत॥

केमिटो टेक्नोलॉजीज (प्रा0) लिमिटेड
8, मोहता भवन, ई-मोजेस रोड, वरली, मुंबई- 400 018
फोन: 2493 8893, फैक्स: 2493 6166
Email: arun@chemito.net
की मंगल कामनाओं सहित

दूहा धरम रा

मंगळकारी धरम रो, किसो' क प्रबल प्रभाव।
अंतरमन रा दुख मिटै, सीतळ हुवै सुभाव॥

ब्याकुल मानव मानवी, चखै धरम रो स्वाद।
रोग सोक सारा मिटै, बिपदा मिटै बिसाद॥

चल साधक चलता रवां, देस और परदेस।
धरम चारिका स्यूं कटै, जन जन मन रा क्लेस॥

धरम धरा स्यूं फिर हुवै, जग मँह धरम प्रसार।
जन मन रा दुखड़ा कटै, पावै सुख रो सार॥

मोरया ट्रेडिंग कंपनी
सर्वो स्टॉकिस्ट-इंडियन ऑईल, 74, सुरेशदादा जैन शॉपिंग कॉम्प्लेक्स, एन.एच.6,
अजिंठा चौक, जलगांव - 425 003, फोन. नं. 0257-2210372, 2212877
मोबा.09423187301, Email: morolium_jal@yahoo.co.in
की मंगल कामनाओं सहित

"विपश्यना विशोधन विन्यास" के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक: राम प्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी- 422 403, दूरभाष :(02553) 244086, 244076.
मुद्रण स्थान : अपोलो प्रिंटिंग प्रेस, 259, सीकाफ लिमिटेड, 69 एम. आय. डी. सी, सातपुर, नाशिक-422 007. बुद्धवर्ष 2563, आषाढ़ पूर्णिमा, 5 जुलाई, 2020

वार्षिक शुल्क रु. 30/-, US $ 10, आजीवन शुल्क रु. 500/-, US $ 100. "विपश्यना" रजि. नं. 19156/71. Postal Regi. No. NSK/RNP-235/2018-2020

Posting day- **Purnima of Every Month,** Posted at **Igatpuri-422 403,** Dist. Nashik (M.S.) **(फुटकर बिक्री नहीं होती)**

DATE OF PRINTING: (on-line-edition), DATE OF PUBLICATION: 5 JULY, 2020

If not delivered please return to:-
विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी - 422 403
जिला-नाशिक, महाराष्ट्र, भारत
फोन : (02553) 244076, 244086,
244144, 244440.
Email: vri_admin@vridhamma.org;
course booking: info@giri.dhamma.org
Website: www.vridhamma.org